JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन भारतीय संगीत
MUSIC IN ANCIENT INDIA

डॉ0 आरती सिसोदिया
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
संगीत विभाग
एम0के0पी0 (पी0जी0) कॉलेज
देहरादून, उत्तराखण्ड (भारत)

सारांश–

प्राचीन समय से ही विभिन्न ललित कलाओं, ज्ञान तथा विज्ञान को भारत में उच्च स्थान प्राप्त था। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विश्व के सभी देशों ने भारतवर्ष से ही इसका ज्ञान प्राप्त किया। आज भारतीय संगीत का जो रूप हमारे समक्ष है, उसका अपना एक क्रमिक विकास है, जिसका प्रत्येक युग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अन्तर्गत विश्लेषण किया जा सकता है। सम्भवतः विश्व संगीत का मूल आधार भी प्राचीन भारत के वेदो में साम गान का स्वर–छन्द में गाया जाना ही है। इस प्राचीन भारतीय संगीत ने अधुना भारतीय संगीत की इस प्रकार की सुद्धढ़ नींव डाली, जिससे यह संगीत विभिन्न युगों में उत्तरोत्तर विकसित होता ही चला गया।

संकेत शब्द–
संगीत, स्वर, सिन्धु, वैदिक काल, रामायण, महाभारत।

संगीत स्वरो की अलंकृत, लयबद्ध पद रचना है जो मानव के अन्तर्भावनाओं की सौन्दर्यपूर्ण साकार अभिव्यक्ति है। इसकी अविरल धारा प्रकृति तथा चराचर जगत में सदियों से वर्तमान तक समाहित और प्रवाहित है। संगीत कला के सूर्य का उदय इस वसुन्दरा पर सृष्टि के प्रारम्भ से ही हो चुका था। पाश्चात्य संगीत विषयक विद्वान मैंसोपोटामिया, चीन अथवा ग्रीक संगीत को सबसे प्राचीन व संगीत का मूल स्रोत मानते है, जबकि भारतीय संगीत उन सबसे प्राचीन व मौलिक संगीत है। मानव जाति के विकास के आदिमकाल में भी संगीत का अस्तित्व पाया गया है तथा इसका विकास भी मानव जाति के विकास के साथ ही साथ हुआ। शनैः शनैः मानव के प्रयत्नों द्वारा संगीत कला विभिन्न कालों में उत्तरोत्तर विकसित होती ही चली गई। भारतीय संगीत के इतिहास में स्थूल दृष्टि से चार काल–विभाग हो सकते है– प्रागैतिहासिक काल जो कि 5000 ई0पू0 से 3000 ई0 पूर्व का काल था, वैदिक काल जिसका समय ईसा पूर्व 3000 से ईसा 11वीं शताब्दी तक रहा, मध्यकाल जिसका कालखण्ड 11वीं से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है तथा आधुनिक काल जो 18वीं शताब्दी से वर्तमान समय तक चला आ रहा है।

प्रागैतिहासिक काल से अभिप्राय उस सुदूर एवं अतीतकाल खण्ड से है, जिसके सम्बंध में कोई सूत्रबद्ध ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नही होती। प्रागैतिहासिक सभ्यता का दिग्दर्शन सिन्धु तथा हरप्पा जैसे स्थानों में उपलब्ध है, जिसके माध्यम से भारत की अतीत एवं गौरवमयी संस्कृति का प्रथम ऐतिहासिक दर्शन उपलब्ध होता है। इसके ध्वंसावशेष सिन्धु निवासियों की दीर्घकालीन सांस्कृतिक परम्परा के क्रमिक विकास तथा अंततोगत्वा चरम परिणति की सूचना देते है।

सिन्धु उपत्यकाओं के खनन से प्राप्त वीणाऐं, सप्तछिद्रयुक्त बंशियाँ, मृदंगादि विविध चर्म वाद्य, करताल, ब्रोंज की नर्तनशील पूर्ण या खण्डित मूर्तियाँ, तत्कालीन संगीत की अभिरूचि का परिचय देती है। महादेव शिव का नटराज रूप प्राचीन भारत में इस कला के प्रति जनसमुदाय की निष्ठा का प्रमाण है।[1]

उत्खनन में प्राप्त कलात्मक आकृतियों से यह प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था तथा धार्मिक एवं लौकिक समारोंहो पर गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। इनके साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी। कुछ लोगों की गवेषणानुसार तत्कालीन संगीत में जन्म, मृत्यु, विवाह, युद्ध, खाद्य, रोग, प्रजा इत्यादि के लिये विभिन्न श्रेणी विभाग थे।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि उस समय संगीत के प्रभाव से वे लोग विविध आलौकिक कार्य कर सकते थे। ऐसी धारणाओं के संस्कार अभी भी खानाबदोश, बंजारो एवं आदिवासी इत्यादि समुदायों के मध्य प्रचलित है।[2]

मोहनजोदडो की खुदाई में नृत्य करती हुयी स्त्री की एक काँसे की मूर्ति मिली है। इसके बारे में डॉ0 राधा कुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि नृत्य करती हुई स्त्री के पैरों की मुद्रा तालात्मक है। इससे यह पता लगता है कि आर्येत्तर जातियों में ताल और स्वर का समुचित ज्ञान था।[3]

हरप्पा में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। कुछ मुद्राओं तथा ताबीजो के दृश्यों में ऐसी वस्तुएं परिलक्षित होती है जिन्हें वीणा का रूप माना जा सकता है। इस काल में संगीत में किसी प्रकार की श्रृंगारिकता नही झलकती जिसका कारण आर्यो का आध्यात्मिक एवं नैतिक स्तर था, जो इस काल के संगीत की नींव बना।

वैदिक काल वह दीर्घ समयावधि है, जिसमें ऋगवेद, यजुर्वेद, अर्थवेद, सामवेद– चतुर्वेदों की रचना के अतिरिक्त उनकी व्याख्या करने वाले ब्राह्मण, आरण्यक नामक ग्रन्थ तथा तत्कालीन रीति–रिवाजो पर प्रकाश डालने वाले सूत्र ग्रन्थों का भी समादेश होता है तथा वैदिक साहित्य द्वारा भारतीय संगीत–सरित् के अनादि स्त्रोत का दृश्य स्वरूप हमारे प्रथम बार अभिव्यंजित होता है।

वैदिक काल में संगीत को उच्च सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रादुर्भाव वैदिककालीन सामगान से माना गया है। वैदिक काल में ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं का सस्वर पाठ किया जाता था, उन्हीं गेय ऋचाओं को अलगकर सामगान की संज्ञा दी गई। पहले सामगान में केवल तीन स्वर–'उदात्त', 'अनुदात्त' और 'स्वरित' प्रयोग होते थे। कालक्रम में वैदिक व लौकिक सप्त स्वरों का विकास हुआ। वैदिक सात स्वरों के नाम क्रमानुसार इस प्रकार हैं –क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य।

वैदिक काल में संगीत का स्वरूप पवित्रतम था। यह आत्मविनोद और सामान्यजनों के मनोरंजन के लिये नही था, अपितु यज्ञों में ईश्वर आराधना के लिये महान ऋषिओं द्वारा इसका प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक उत्सवों के समय लौकिक संगीत का प्रयोग होता था।

वैदिक युग में सार्वजनिक संगीत आयोजन तथा प्रतियोगिताओं का एक मनोरंजक रूप 'समन' के नाम से देखने में आता है। यह समन एक प्रकार से सांगीतिक मेला था।[4] यह समन आगे चलकर 'समज्जा' के नाम से प्रस्फुटित हुआ।

संगीत मनोविनोद का प्रमुख साधन था, नृत्य का प्रचलन था, जिसकी पुष्टि 'ऋग्वेद' में वर्णित 'नृत्यमनो अमृता' (5/33/6) वाक्य से हो जाती है। 'ऋग्वेद' में नृत्य–कुशल स्त्रियों का भी वर्णन मिलता है। (ऋ0 1/92/4)[5] वैदिक युग में वीणा वाद्य का विशेष महत्व था तथा उसके अनेक नाम थे।

रामायण तथा महाभारत काल में संगीत विषयक उन्नति तथा प्रसार के सर्वत्र दर्शन होते है। संगीत के लिये रामायण में "गान्धर्व" संज्ञा उपलब्ध है तथा युद्ध संगीत के लिये कहीं–कहीं "युद्ध गान्धर्व" संज्ञा भी प्राप्य है।[6]

रामायण एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें संगीत की अपार सम्पदा निहित है। रामायण में दशरथ पुत्रों के जन्मोत्सव, विवाह तथा वनवास के पश्चात राम के पुनः अयोध्या आगमन जैसे अवसरों पर विभिन्न प्रकार के वाद्यों के साथ गीतों की मनोरम ध्वनियाँ तथा नृत्य के घुँघरूओं की झनकार सुनाई पडती है। रामायण काल में गान्धर्व के अन्तर्गत श्रुति तथा स्वरों की वैज्ञानिक विवेचना आरम्भ हो चुकी थी। रामायण में जातियों का परिचय पाठ्य–जाति और स्वर–जाति के रूप में प्राप्त होता है।[7]

रामायण काल के समान महाभारत काल में नित्य के सामाजिक जीवन में संगीत का प्रमुख स्थान था। शान्ति पर्व के 191 सर्ग के 16वें श्लोक में नित्य के उपभोगों में 'नृत्य गीत वादित्र' को परिगणित किया है।[8]

व्यासमुनि द्वारा रचित 'महाभारत' का वृहद प्रचार मागध, सूत, चारण आदि लोक गायकों के द्वारा हुआ। महाभारत काल में गेय प्रबन्धों के अन्तर्गत साम, गाथा तथा मंगलगीतियों का प्रामुख्य से उल्लेख पाया जाता है।

नृत्य का महाभारत के कई स्थानों में उल्लेख है – जैसे – "ननुतृर्नर्तकाश्चैव जागुर्गीतानि गायिका" (आदिपर्व 206/4), "नृत्यवादित्रगीतैश्च" (सभापर्व 5/24), "नृत्यंगीतं वाद्यं च" (अरण्यपर्व 40/6)[9]

श्रीकृष्ण और गोपिकाओं की रास लीला (नाटकीय लोक नृत्य) उस काल के संगीत का प्रमुख प्रदर्शन है।[10]

यह काल संगीत के त्रिविध (गीत, वाद्य, नृत्य) उपयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में संगीत का प्रयोग किया जाना तत्कालीन समाज की कलाप्रियता का द्योतक है। अतः उस काल को "सागीतिक काल" कहना अतिश्योक्ति नही है।[11]

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों के रचना काल में संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का विपुल प्रचार था। संगीत को राजाश्रय प्राप्त था तथा कुछ राजा अच्छे संगीतकार थे।

विस्तृत विवेचना और प्राचीनता की दृष्टि से भरत का 'नाट्यशास्त्र' संगीत का आदि ग्रंथ कहा जा सकता है। यद्यपि इसका प्रतिपाद्य विषय प्रधानतया 'नाट्य' है, परन्तु इसके अट्ठाईस से बत्तीसवें अध्याय तक संगीत का सम्यक् निरूपण हुआ है। वैदिक काल से पहले की संगीत कला एक कालिन्दी के रूप में बह रही है, इस ग्रन्थ द्वारा उसके विकास की यात्रा का दिग्दर्शन होता है।

मौर्य काल में संगीत लोगों के मनोविनोद का प्रधान साधन था। गुप्त–युग में संगीत, नृत्य कला एवं अभिनय कला के लोकप्रिय होने के सबल प्रमाण प्राप्त होते है। अन्य कलाओं के साथ संगीत कला भी उच्च स्तर पर पहुँच चुकी थी। रंगमंच का विकास हो चुका था तथा उस पर श्रेष्ठ अभिनय व नृत्य किया जाता था। राज्य की ओर से भी संगीत–कला को आश्रय मिलता था। भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है – 'ललित कलाओं के विकास में राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी। राजे ललित कलाओं की अभिवृद्धि में बहुत मनोयोग देते थे, जिसकी मुख्य शाखा संगीत थी।[12]

गुप्त वंश के बाद भी संगीत कला की उन्नति होती रही। हर्षवर्धन और भोज के राज दरबारों में संगीत–कला का ही अभ्युदय नही हुआ अपितु उनके आश्रय के कारण संगीत–रीति के भी अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ। अन्ततःयही प्रागैतिहासंक व वैदिक संगीत आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रच्छन्न आधार है जिसने ऐसे आलौकिक संगीत की नींव डाली जिससे आगे चलकर भारतीय संगीत के स्वर्ण युग का सूत्रपात हुआ।

संदर्भग्रन्थ–

1. डॉ0 अरूण कुमार सैन– ''भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन'' (भूमिका, पृ–3 मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर मार्ग, द्वितीय संस्करण–1989)
2. अमलदास शर्मा– ''विश्व संगीत का इतिहास'' (अरूणोदय, पृ0–3) राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, संस्करण 1990)
3. हरिप्रसाद नायक अंशुमाली– लेख "भारतीय संगीत की ऐतिहासिक परम्परा"(स्मारिका–द्वितीय आविल भारतीय तानसेन संगीत सम्मेलन, आगरा–30 अप्रैल – 1 मई 1977)
4. डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा– ''भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण'' (अ0–1, पृ0–13) टी0एन0 भार्गव एण्ड सन्स 1131, कटरा इलाहाबाद प्रथम संस्करण – मार्च 1986
5. मंजुरंजना शर्मा– लेख– ''सदियों वर्ष पूर्व जब धरती पर संगीत लहराता था'' ('संगीत'–वर्ष–36, अंक–9, सितम्बर 1970, पृ0–8 संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश।
6. डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा– ''भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण'' (अ0–1, पृ0–23) टी0एन0 भार्गव एण्ड सन्स 1131, कटरा इलाहाबाद प्रथम संस्करण – मार्च 1986
7. डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा– ''भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण'' (अ0–1, पृ0–25) टी0एन0 भार्गव एण्ड सन्स 1131, कटरा इलाहाबाद प्रथम संस्करण – मार्च 1986
8. ठा0 जयदेव सिंह– ''भारतीय संगीत का इतिहास'' (अ0–9, पृ0–190 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी संस्करण–2016)
9. डॉ0 अरूण कुमार सैन– ''भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन'' (भूमिका, पृ0–11 मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर मार्ग, द्वितीय संस्करण–1989)
10. राम अवतार वीर– ''भारतीय संगीत का इतिहास, भाग–1'' (अ0–7, पृ–71 राधा पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2001)
11. तुलसीराम देवांगन– ''भारतीय संगीत शास्त्र'' (पृ0–79 मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रविन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल प्रथम संस्करण–1997
12. हरिप्रसाद नायक अंशुमाली– लेख "भारतीय संगीत की ऐतिहासिक परम्परा"(स्मारिका–द्वितीय आविल भारतीय तानसेन संगीत सम्मेलन, आगरा–30 अप्रैल – 1 मई 1977)